जब सब कुछ अधिकार बन जाता है
When Everything Becomes a Right

निकोलस रॉबिन्सन

Nicholas Robinson
October 22, 2012

जब भी भारत में सामाजिक नीति का सवाल उठता है तो सभी जगह इन दिनों अधिकार पाने की बात ही सुनाई पड़ती है. भारत के उच्चतम न्यायालय ने भोजन के अधिकार की घोषणा कर दी, स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार की घोषणा कर दी, घर के अधिकार की घोषणा कर दी और सबको सुख-चैन से सोने के अधिकार की भी घोषणा कर दी. भारतीय संसद ने ऐसे अधिनियम पारित कर दिये हैं जिनसे सबको शिक्षा, सूचना और ग्रामीण रोज़गार के अधिकार की गारंटी मिल जाएगी और अब ऐसा व्यापक कानून बनाने पर विचार किया जा रहा है जिससे सबको खाद्य सुरक्षा संबंधी अधिकार मिल जाएगा. पीड़ित नागरिकों की शिकायतों को दूर करने के लिए राज्य की विधानसभाओं ने हाल ही में सार्वजनिक सेवा संबंधी अधिकार के अधिनियमों को लागू करना शुरू कर दिया है ताकि ड्राइविंग लाइसेंस या घर के प्रमाणपत्र जैसी ज़रूरी सरकारी सेवाओं को निर्धारित समय-सीमा के अंदर ही प्रोसेस किया जा सके और दोषी अधिकारियों को दंडित किया जा सके.

भारतीय नीति के परिप्रेक्ष्य में इन सभी अधिकारों का उदय बहुत नाटकीय रूप में हुआ. यदि हम अस्सी के दशक में लौटकर जाएँ तो पाएँगे कि उस समय ऐसे अधिकारों की कोई बात नहीं थी, लेकिन गरीबों के उद्धार के लिए ढेर-सी योजनाएँ थीं. कुछ लोग इन अधिकारों के उदय होने की आलोचना इसीलिए करते हैं क्योंकि ये खोखले वायदे हैं. कुछ लोगों का कहना है कि दुनिया के अधिकांश देशों ने अधिकारों का व्यापक और स्पष्ट उल्लेख किये हुए बिना भी अनेक सामाजिक कल्याण योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू किया है. इसलिए भारत में अधिकारों की जो आँधी आयी है उससे रचनात्मक दिशा में कोई काम होने के बजाय विनाश की दिशा में ही काम हो रहा है?

निश्चय ही विकास को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक और आर्थिक अधिकार सहित मानवाधिकारों की एक विश्वव्यापी प्रवृत्ति भी रही है, जिसे अक्सर अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने समर्थन दिया है. भारत में आर्थिक उदारीकरण ने कदाचित् ऊपर से नीचे की ओर जाने वाली योजना के स्वरूप को व्यक्तिगत सशक्तीकरण में बदल दिया है, जिसके लिए कदाचित् अधिकार की भाषा अधिक स्वाभाविक लगती है. लेकिन भारतीय सामाजिक नीति में आयी अधिकार की संकल्पना के परिवर्तन को मात्र बाहरी या आर्थिक कारणों से जोड़ना भी गलत होगा, क्योंकि ये ताकतें तो अन्य देशों में भी सक्रिय रही हैं. इसलिए इसके पीछे अनेक व्यापक कारण हैं.

इस व्यापक आंदोलन को समझने के लिए हमें उच्चतम न्यायालय और सरकार की राजनैतिक शाखाओं द्वारा की गयी अधिकार की परिभाषाओं में अंतर करना होगा. अस्सी के दशक से ही

लोकवादी उच्चतम न्यायालय सरकार की सामाजिक कल्याणपरक नीतियों की निगरानी करता रहा है और सक्रिय रूप में उनमें हस्तक्षेप भी करता रहा है. हालाँकि न्यायालय अंशतः ही ऐसा कर पाये हैं, क्योंकि न्यायाधीश उन सरकारों को सुधारने में लगे हुए देखे गये हैं जो शासन संबंधी अपने दायित्वों के निर्वाह से बचने की कोशिश करती हैं. परंतु उच्चतम न्यायालय के पास हस्तक्षेप के सीमित साधन ही होते हैं. न्यायालय के लिए यह सौभाग्य की बात है कि संविधान (अनुच्छेद 21) में जीवन के अधिकार को उनके आदेशों के लिए व्यापक संवैधानिक आधार प्रदान करने के साथ पढ़ा जा सकता है और न्यायालय ने अपने अधिकार का अक्सर इस्तेमाल किया है.

उदाहरण के लिए न्यायालय ने ही सरकार को सभी पब्लिक स्कूलों में निःशुल्क मध्याह्न भोजन देने के लिए निर्देश दिये थे, क्योंकि उसने पाया कि खाने पर भी बच्चों का अधिकार है, क्योंकि भोजन जीवन का ही एक भाग है. फिर भी उच्चतम न्यायालय द्वारा परिभाषित सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के संबंध में न्यायालय सरकार के खिलाफ़ कार्रवाई के व्यक्तिगत अधिकार को निर्मित करने के बजाय सामान्यतः मोटे तौर पर सरकारी गतिविधियों पर नज़र रखता है. उदाहरण के लिए यदि पब्लिक स्कूल में किसी बच्चे को मध्याह्न भोजन नहीं मिलता तो उच्चतम न्यायालय ने ऐसा कोई विशेष तंत्र विकसित नहीं किया है जिससे कोई क्षतिपूर्ति का दावा कर सके या दोषी सरकारी अधिकारी को दंडित किया जा सके. इसके बजाय कोई भी व्यक्ति न्यायालय द्वारा नियुक्त खाद्य अधिकार आयुक्त के पास अपनी शिकायत दर्ज करा सकता है, जो चाहे तो अन्य लोगों की तरह उल्लंघन की रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय के पास भेज सकता है और तब न्यायालय व्यापक स्तर पर समस्या के समाधान के लिए सरकारी मंत्री को निर्देश भी दे सकता है. दूसरे शब्दों में न्यायालय ने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को कुछ इस तरह से सूक्ष्म रूप में परिभाषित किया है कि उनमें सामान्य नीति निर्धारण और विशिष्ट नागरिकों द्वारा उठाये गये व्यक्तिगत मामलों का समाधान करने के बजाय सरकार की उसकी अकर्मण्यता के लिए भर्त्सना की जा सकती है.

विधायिका द्वारा बनाये गये अधिकार अपनी रचना में समान न भी हों तो भी अलग किस्म के हैं. यदि किसी व्यक्ति को सूचना अधिकार अधिनियम के अंतर्गत माँगी गयी सूचना नहीं मिलती तो वह सूचना आयुक्त से संपर्क कर सकता है और सूचना आयुक्त इसे सही पाने पर अधिनियम का अनुपालन न करने के दोषी अधिकारी को दंडित कर सकता है. राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (नरेगा) की कार्यप्रणाली कुछ अलग है. यदि किसी व्यक्ति को निर्धारित दिनों के अंदर काम नहीं दिया जाता तो वह स्वतः ही बेकारी क्षतिपूर्ति के लिए अधिकृत हो जाता है. इन दोनों ही मामलों में ज़ोर व्यक्तिविशेष के अधिकृत होने और सरकार द्वारा अनुपालन न करने के परिणाम पर ही रहता है.

इन अधिकार-आधारित अधिनियमों की पहली लहर को आगे बढ़ाने का श्रेय सामान्यतः सूचना के लोकाधिकार और खाद्य अभियान के राष्ट्रीय अभियान जैसे सिविल सोसायटी के कार्यकर्ताओं को जाता है. इन समूहों के अग्रणी कार्यकर्ताओं को आम तौर पर सरकारी अधिकारियों पर भरोसा नहीं है कि वे इस अधिनियम को कार्यान्वित करने में कोई खास दिलचस्पी लेंगे और यही कारण है कि उन्होंने इसे अधिकारोन्मुख स्वरूप प्रदान करने की कोशिश की ताकि विशिष्ट कार्यों को कानूनी जामा

पहनाया जा सके और नौकरशाह इस कानून को लागू करने के लिए अपेक्षित कार्रवाई कर सकें. अधिकारियों की विश्वसनीयता के बारे में उच्च स्तर के राजनेताओं और प्रशासकों की भी यही धारणा है. उदाहरण के लिए, सेवा अधिकार संबधी कार्यों को सामान्यतः सिविल सोसायटी के कार्यकर्ताओं ने नहीं, बल्कि सक्रिय मुख्य मंत्रियों ने आगे बढ़ाया है. इन मुख्यमंत्रियों ने अंशतः ऐसा इसलिए किया, क्योंकि इससे वे राजनैतिक दृष्टि से मतदाताओं में अधिक लोकप्रिय हो सकते थे और साथ ही इससे उन्हें निचले दर्जे के नौकरशाहों को नियंत्रित करने का एक और औजार भी मिल गया. नागरिक अपनी शिकायतों के ज़रिये इसका अनुपालन न करने वाले अधिकारियों को चिह्नित करने में मदद कर सकते थे और इन अधिनियमों से उच्च स्तर के अधिकारियों को निचले स्तर के उन नौकरशाहों को दंडित करने के लिए एक नया औजार मिल गया, जो खराब कार्य-परिणामों के बावजूद दंडित न हो पाने के लिए बदनाम थे. दूसरे शब्दों में अधिकार-आधारित अधिनियमों का मूल स्रोत बहुत हद तक ऐतिहासिक रूप में सरकारी कार्यक्रमों के उचित कार्यान्वयन न होने और नौकरशाहों के प्रति गहरे अविश्वास में निहित है.

भले ही इन अधिकारों को न्यायालय या विधायिका ने वास्तविक रूप में परिभाषित किया हो, लेकिन सरकारी नीति के कार्यान्वयन में सुधार का असर होने में कुछ कमियाँ ज़रूर रह गयी थीं. यह कहना बहुत आसान है कि चूँकि अधिकार बन गये हैं, इसलिए समस्याएँ अब सुलझ गयी हैं या सुलझने वाली हैं जबकि कार्यान्वयन न होने के संरचनात्मक कारण अभी भी मौजूद हैं, भले ही इसका कारण निधि की कमी हो या पदाधिकारियों की क्षमता में कमी हो, नीति का कमज़ोर डिज़ाइन हो या सिविल सेवा में सुधार की आवश्यकता हो. इन समस्याओं को हल करना ज़रूरी है. इसके अलावा अधिकार के अपने दावे निरपेक्ष होते हैं और राज्य के समय और संसाधनों के अनुरूप प्रतियोगी हितों को संतुलित करने में सामान्यतः कमज़ोर साबित होते हैं. उदाहरण के लिए, निचले दर्जे के कुछ कर्मचारी यह मानते हैं कि सेवा संबंधी अधिनियमों में दिये गये अधिकारों के कारण उनके व्यवहार पर भी असर पड़ा है. जैसे जुर्माने से बचने के लिए वे आय प्रमाणपत्रों को प्राथमिकता के आधार पर बहुत शीघ्रता से प्रोसेस करने लगे हैं, लेकिन इसके कारण कुछ ज़रूरी कामों के निपटान में देरी भी हो जाती है और इसके फलस्वरूप कार्य-परिणामों पर असर पड़ने लगा है. अंततः वह अपेक्षा, जिसके कारण आम तौर पर लोग बहुत बेचारे-से लगने लगते हैं, नौकरशाही और न्यायालय में उस समय अधिकारों का दावा करने में सफल हो जाते हैं जब उन्हें अधिकारों से वंचित रखा जाता है और सामान्यतः उनके दावे अवास्तविक प्रमाणित होने लगते हैं.

यह कहना सही नहीं है कि समाज कल्याण के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में अधिकार- आधारित रणनीति का रास्ता गलत है. अधिकार निश्चय ही कार्यान्वयन की चुनौतियों को पूरा करने के लिए व्यापक रणनीति का हिस्सा हो सकते हैं. आखिर भारत जैसे समाज में जहाँ सामाजिक तानाबाना कमज़ोर है, अधिकारों की सहायता से ही उन लोगों को भी सरकार से मूलभूत सामाजिक लाभ पाने में मदद मिल सकती है, जो परंपरागत रूप में वंचित रहे हैं. अधिकार-आधारित रणनीति से मिलने वाले लाभों की सराहना तो की जानी चाहिए, लेकिन साथ ही रणनीति की सीमाओं और लागत का भी ख्याल रखा जाना चाहिए. अधिकारों से देश की लंबे समय से चली रही कार्यान्वयन की चुनौतियों का

समाधान नहीं होगा, लेकिन इसके लिए ठोस नीति बनाना और नौकरशाही में सुधार लाना आवश्यक होगा.

निकोलस रॉबिन्सन नई दिल्ली स्थित नीति अनुसंधान केंद्र में विज़िटिंग फ़ैलो हैं. वे "कैसी" पतझड़ (फ़ॉल) 2012 *के विज़िटिंग फ़ैलो हैं.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>